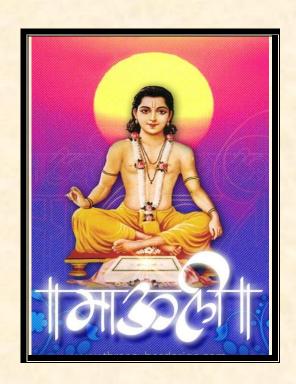
॥ श्रीहरि ॥ ॥ श्री भावार्थदीपिका ॥ ॥ अध्याय आठवा ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)



\$\racks\\$\rack

हेचि आम्हां करणे काम । बीज वाढवावे नाम ॥

संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

॥ अध्याय आठवा ॥ ॥ अक्षरब्रह्मयोगः॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$>

अर्जुन उवाच । किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम । अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

मग अर्जुनें म्हणितलें । हां हो जी अवधारिलें । जें म्यां पुसिलें । तें निरूपिजो ॥ १ ॥ सांगा कवण तें ब्रह्म । कायसया नाम कर्म । अथवा अध्यात्म । काय म्हणिपे ॥ २ ॥ अधिभूत तें कैसें । एथ अधिदैव तें कवण असे । हें उघड मी परियेसें । ऐसें बोला ॥ ३ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन । प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २॥

देवा अधियज्ञ तो काई । कवण पां इये देहीं ।
हं अनुमानासि कांहीं । दिठी न भरे ॥ ४ ॥
आणि नियता अंतःकरणीं । तूं जाणिजसी देहप्रयाणीं ।
तें कैसेनि हे शारङ्गपाणी । परिसवा मातें ॥ ५ ॥
देखा धवळारीं चिंतामणीचा । जरी पहुडला होय दैवाचा ।
तरी वोसणतांही बोलु तयाचा । सोपु न वचे ॥ ६ ॥
तैसें अर्जुनाचिया बोलासवें । आलें तेंचि म्हणितलें देवें ।
तें परियेसें गा बरवें । जे पुसिलें तुवां ॥ ७ ॥

किरीटी कामधेनूचा पाडा । वरी कल्पतरूचा आहे मांदोडा । म्हणौनि मनोरथसिद्धीचिया चाडा । तो नवल नोहे ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण कोपोनि ज्यासी मारी । तो पावे परब्रह्मसाक्षात्कारीं । मा कृपेनें उपदेशु करी । तो कैशापरी न पवेल ॥ ९ ॥ जैं कृष्णचि होइजे आपण । तैं कृष्ण होय आपुलें अंतःकरण । मग संकल्पाचें आंगण । वोळगती सिद्धी ॥ १० ॥ परि ऐसें जें प्रेम । तें अर्जुनींचि आथि निस्सीम । म्हणौनि तयाचें काम । सदां सफळ ॥ ११ ॥ या कारणें श्रीअनंतें । तें मनोगत तयाचें पुसतें । होईल जाणोनि आइतें । वोगरूनि ठेविलें ॥ १२ ॥ जें अपत्य थानीहृनि निगे । तयाची भूक ते मायेसीचि लागे । ए-हवीं तें शब्दें काय सांगें। मग स्तन्य दे येरी ॥ १३ ॥ म्हणौनि कृपाळुवा गुरूचिया ठायीं । हें नवल नोहे कांहीं । परि तें असो आइका काई । जें देव बोलते जाहले ॥ १४ ॥

> श्रीभगवानुवाच । अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते । भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

मग म्हणितलें सर्वेश्वरें । जें आकारीं इयें खोंकरें । कोंदलें असत न खिरे । कवणे काळीं ॥ १५ ॥ ए-हवीं सपूरपण तयाचें पहावें । तरी शून्यचि नव्हे स्वभावें । वरी गगनाचेनि पालवें । गाळूनि घेतलें ॥ १६ ॥ जें ऐसेंही परि विरुळें । इये विज्ञानाचिये खोळे ।

हालवलेंहि न गळे । तें परब्रह्म ॥ १७ ॥ आणि आकाराचेनि जालेपणें । जन्मधर्मातें नेणें । आकारलोपीं निमणें । नाहीं कहीं ॥ १८ ॥ ऐशिया आपुलियाची सहजस्थिती । जया ब्रह्माची नित्यता असती । तया नाम सुभद्रापती । अध्यात्म गा ॥ १९ ॥ मग गगनीं जेविं निर्मळें । नेणों कैचीं एके वेळे । उठती घनपटळें । नानावर्णें ॥ २० ॥ तैसें अमूर्तीं तिये विशुद्धें । महदादि भूतभेदें । ब्रह्मांडाचे बांधे । होंचि लागती ॥ २१ ॥ पैं निर्विकल्पाचिये बरडीं । फुटे आदिसंकल्पाची विरूढी । आणि तें सवेंचि मोडोनि ये ढोंढी । ब्रह्मगोळकांच्या ॥ २२ ॥ तया एकैकाचे भीतरीं पाहिजे । तंव बीजाचाचि भरिला देखिजे । मार्जी होतिया जातिया नेणिजे । लेख जीवा ॥२३॥ मग तया ब्रह्मगोळकांचें अंशांश । प्रसवती आदिसंकल्प असमसहास । हें असो ऐसी बहुवस । सृष्टी वाढे ॥ २४ ॥ परि दुजेनविण एकला । परब्रह्मींचि संचला । अनेकत्वाचा आला । पूर जैसा ॥ २५ ॥ तैसें समविषमत्व नेणों कैचें । वायांचि चराचर रचे । पाहतां प्रसवतिया योनीचे । लक्ष दिसती ॥ २६ ॥ येरी जीवभावाचिये पालविये । कांहीं मर्यादा करूं नये । पाहिजे कवण हें आघवें विये । तंव मूळ तें शून्य ॥ २७ ॥ म्हणौनि कर्ता मुदल न दिसे । आणि सेखीं कारणहीं कांहीं नसे । माजीं कार्यचि आपैसें । वाढों लागे ॥ २८ ॥

ऐसा करितेनवीण गोचरु । अव्यक्तीं हा आकारु । निपजे जो व्यापारु । तया नाम कर्म ॥ २९ ॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$>

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् । अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४॥

आतां अधिभूत जें म्हणिपे । तेंहि सांगों संक्षेपें । तरी होय आणि हारपे । अभ्र जैसें ॥ ३० ॥ तैसें असतेपण आहाच । नाहीं होईजे हें साच । जयातें रूपा आणिती पांचपांच । मिळोनियां ॥ ३१ ॥ भूतांतें अधिकरूनि असे । आणि भूतसंयोगें तरी दिसे । जें वियोगवेळे भ्रंशें । नामरूपादिक ॥ ३२ ॥ तयातें अधिभूत म्हणिजे । मग अधिदैव पुरुष जाणिजे । जेणें प्रकृतीचें भोगिजे । उपार्जिलें ॥ ३३ ॥ जो चेतनेचा चक्षु । जो इंद्रियदेशींचा अध्यक्षु । जो देहास्तमानीं वृक्षु । संकल्प विहंगमाचा ॥ ३४ ॥ जो परमात्माचि परी दुसरा । जो अहंकारनिद्रा निदसुरा । म्हणौनि स्वप्नीचिया वोरबारा । संतोषें शिणे ॥ ३५ ॥ जीव येणें नांवें । जयातें आळविजे स्वभावें । तें अधिदैवत जाणावें । पंचायतनींचें ॥ ३६ ॥ आतां इयेचि शरीरग्रामीं । जो शरीरभावातें उपशमी । तो अधियज्ञ एथ गा मी । पंडुकुमरा ॥ ३७ ॥ येर अधिदैवाधिभूत । तेहि मीचि कीर समस्त । परि पंधरें किडाळा मिळत । तें काय सांके नोहे ॥ ३८ ॥

तरि तें पंधरेपण न मैळे । आणि किडाळाचियाही अंशा न मिळे । परि जंव असे तयाचेनि मेळें । तंव सांकेंचि म्हणिजे ॥३९॥ तैसें अधिभूतादि आघवें । हें अविद्येचेनि पालवें । झांकलें तंव मानावें । वेगळें ऐसें ॥ ४० ॥ तेचि अविद्येची जवनिका फिटे। आणि भेदभावाची अवधी तुटे। मग म्हणों एक होऊनि जरी आटे । तरी काय दोनी होती ॥४१॥ पैं केशांचा गुंडाळा । वरि ठेविली स्फटिकशिळा ते वरि पाहिजे डोळां । तंव भेदली गमती ॥ ४२ ॥ पाठीं केश परौते नेले । आणि भेदलेपण काय नेणों जाहालें । तरी डांक देऊनि सांदिलें । शिळेतें काई ॥ ४३ ॥ ना ते अखंडचि आयती । परि संगें भिन्न गमली होती । ते सारिलिया मागौती । जैसी कां तैसी ॥ ४४ ॥ तेवींचि अहंभावो जाये । तरी ऐक्य तें आधींचि आहे । हेंचि साचें जेथ होये। तो अधुयज्ञु मी ॥ ४५ ॥ पैं गा आम्हीं तुज । सकळ यज्ञ कर्मज । सांगितलें कां जें काज । मनीं धरूनि ॥ ४६ ॥ तो हा सकळ जीवांचा विसांवा । नैष्कर्म्य सुखाचा ठेवा । परि उघड करूनि पांडवा । दाविजत असे ॥ ४७ ॥ पहिलिया वैराग्येंधन परिपूर्तीं । इंद्रियानळीं प्रदीप्तीं । विषयद्रव्याचिया आहुती । देऊनियां ॥ ४८ ॥ मग वज्रासन तेचि उर्वी । शोधूनि आधारमुद्रा बरवी । वेदिका रचे मांडवीं । शरीराच्या ॥ ४९ ॥ तेथ संयमाग्नीचीं कुंडें । इंद्रियद्रव्याचेनि पवाडें ।

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

यजिजती उदंडें । युक्तिघोषें ॥ ५० ॥ मग मनप्राणसंयमु । हाचि हवनसंपदेचा संभ्रमु । येणें संतोषविजे निर्धूमु । ज्ञानानळु ॥ ५१ ॥ ऐसेनि हें सकळ ज्ञानीं समर्पें। मग ज्ञान तें ज्ञेयीं हारपे। पाठी ज्ञेयचि स्वरूपें । निखिल उरे ॥ ५२ ॥ तया नांव गा अधियज्ञ । ऐसें बोलिला जंव सर्वज्ञ । तंव अर्जुन अतिप्राज्ञु । तया पातलें तें ॥ ५३ ॥ हें जाणोनि म्हणितलें देवें । पार्था परिसतु आहासि बरवें । या कृष्णाचिया बोलासवें । येरु सुखाचा जाहला ॥ ५४ ॥ देखा बालकाचिया धणि धाइजे । कां शिष्याचेनि जाहलेपणें होइजे । हें सद्गुरूचि एकलेनि जाणिजे । कां प्रसवतिया ॥५५॥ म्हणौनि सात्त्विक भावांची मांदी । कृष्णाआंगीं अर्जुनाआधीं । न समातसे परी बुद्धी । सांवरूनि देवें ॥ ५६ ॥ मग पिकलिया सुखाचा परिमळु । कीं निवालिया अमृताचा कल्लोळु । तैसा कोंवळा आणि सरळु । बोलु बोलिला ॥५७॥ म्हणे परिसणेयांचिया राया । आइकें बापा धनंजया । ऐसी जळों सरलिया माया । तेथ जाळितें तेंही जळे ॥ ५८ ॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति स मद्भवं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५॥ जें आतांचि सांगितलें होतें। अगा अधियज्ञ म्हणितला जयातें। जे आदींचि तया मातें। जाणोनि अंतीं॥ ५९॥ ते देह झोल ऐसें मानुनी। ठेले आपणपें आपण हौनी।

जैसा मठ गगना भरुनी । गगनींचि असे ॥ ६० ॥ ये प्रतीतीचिया माजघरीं । तया निश्चयाची वोवरी । आली म्हणौनि बाहेरी । नव्हेचि से ॥ ६१ ॥ ऐसें सबाह्य ऐक्य संचलें । मीचि होऊनि असतां रचिलें । बाहेरि भूतांचीं पांचही खवलें । नेणतांचि पडिलीं ॥ ६२ ॥ आतां उभेयां उभेपण नाहीं जयाचें । मा पडिलिया गहन कवण तयाचें । म्हणौनि प्रतीतीचिये पोटींचें । पाणी न हाले ॥६३॥ ते ऐक्याची आहे वोतिली । कीं नित्यतेचिया हृदयीं घातली । जैसी समरससमुद्रीं धुतली । रुळेचिना ॥ ६४ ॥ पैं अथावीं घट बुडाला । तो आंतबाहेरी उदकें भरला । पाठीं दैवगत्या जरी फुटला । तरी उदक काय फुटे ॥ ६५ ॥ नातरी सर्पें कवच सांडिलें । कां उबारेनें वस्त्र फेडिलें । तरी सांग पां काय मोडलें । अवेवामाजीं ॥ ६६ ॥ तैसा आकारु हा आहाच भ्रंशे । वांचूनी वस्तु ते सांचलीचि असे । तेचि बुद्धि जालिया विसकुसे । कैसेनि आतां ॥६७॥ म्हणौनि यापरी मातें । अंतकाळीं जाणतसाते । जे मोकलिती देहातें । ते मीचि होती ॥ ६८ ॥ ए-हवीं तरी साधारण । उरीं आदळलिया मरण । जो आठवु धरी अंतःकरण । तेंचि होईजे ॥ ६९ ॥ जैसा कवणु एकु काकुळती । पळतां पवनगती । दुपाउलीं अवचितीं । कुहामाजीं पडियेला ॥ ७० ॥ आतां तया पडणयाआरौतें । पडण चुकवावया परौतें । नाहीं म्हणौनि तेथें । पडावेंचि पडे ॥ ७१ ॥

तेवं मृत्यूचेनि अवसरं एकं । जें येऊनि जीवासमोर ठाके । तें होणें मग न चुके । भलतयापरी ॥ ७२ ॥ आणि जागता जंव असिजे । तंव जेणें ध्यानें भावना भाविजे । डोळां लागतखेंवो देखिजे । तेंचि स्वप्नीं ॥ ७३ ॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६॥

तेविं जितेनि अवसरें । जें आवडोनि जीवीं उरे । तेंचि मरणाचिये मेरे । फार हों लागे ॥ ७४ ॥ आणि मरणीं जया जें आठवे । तो तेचि गतीतें पावे । म्हणौनि सदा स्मरावें । मातेंचि तुवां ॥ ७५ ॥)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)><\(\mathreal)>

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च । मर्य्यापतमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७॥

डोळां जें देखावें । कां कानीं हन ऐकावें । मनीं जें भावावें । बोलावें वाचें ॥ ७६ ॥ तें आंत बाहेरी आघवें । मीचि करूनि घालावें । मग सर्वीं काळीं स्वभावें । मीचि आहें ॥ ७७ ॥ अर्जुना ऐसें जाहालिया । मग न मिरजे देह गेलिया । मा संग्रामु केलिया । भय काय तुज ॥ ७८ ॥ तूं मन बुद्धि सांचेंसीं । जरी माझिया स्वरूपीं अर्पिसी । तरी मातेंचि गा पावसी । हे माझी भाक ॥ ७९ ॥ हेंच कायिसया वरी होये । ऐसा जरी संदेहो वर्ततु आहे । तरी अभ्यासूनि आदीं पाहें। मग नव्हे तरी कोपें॥ ८०॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना । परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८॥

येणेंचि अभ्यासेंसी योगु । चित्तासि करी पां चांगु ।
अगा उपायबळें पंगु । पहाड ठाकी ॥ ८१ ॥
तेविं सदभ्यासें निरंतर । चित्तासि परमपुरुषाची मोहर ।
लावीं मग शरीर । राहो अथवा जावो ॥ ८२ ॥
जें नानागतीतें पाववितें । तें चित्त वरील आत्मयातें ।
मग कवण आठवी देहातें । गेलें कीं आहे ॥ ८३ ॥
पैं सरितेचेनि ओघें । सिंधुजळा मीनलें घोघें ।
तें काय वर्तत आहे मागें । म्हणौनि पाहों येती ॥ ८४ ॥
ना तें समुद्रचि होऊन ठेलें । तेविं चित्ताचें चैतन्य जाहालें ।
जेथ यातायात निमालें । घनानंद जें ॥ ८५ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९॥

जयाचें आकारावीण असणें । जया जन्म ना निमणें । जें आघवेंचि आघवेंपणें । देखत असे ॥ ८६ ॥ जें गगनाहूनि जुनें । जें परमाणुहूनि सानें । जयाचेनि सन्निधानें । विश्व चळे ॥ ८७ ॥ जें सर्वांते यया विये । विश्व सर्व जेणें जिये । हेतु जया बिहे । अचिंत्य जें ॥ ८८ ॥ देखे वोळंबा इंगळु न चरे । तेजीं तिमिर न शिरे । जे दिहाचे अंधारें । चर्मचक्षूसीं ॥ ८९ ॥ सुसडा सूर्यकणांच्या राशी । जो नित्य उदो ज्ञानियांसी । अस्तमानाचे जयासी । आडनांव नाहीं ॥ ९० ॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव । भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥ तया अव्यंगवाणेया ब्रह्मातें । प्रयाणकाले प्राप्ते । जो स्थिरावलेनि चित्तें । जाणोनि स्मरे ॥ ९१ ॥ बाहेरी पद्मासन रचुनी । उत्तराभिमुख बैसोनि । जीवीं सुख सूनि । क्रमयोगाचे ॥ ९२ ॥ आंतु मीनलेनि मनोधर्में । स्वरूपप्राप्तीचेनि प्रेमें । आपेआप संभ्रमें । मिळावया ॥ ९३ ॥ आकळलेनि योगें । मध्यमा मध्य मार्गे । अग्निस्थानौनि निगे । ब्रह्मरंध्रा ॥ ९४ ॥ तेथ अचेत चित्ताचा सांगातु । आहाचवाणा दिसे मांडतु । जेथ प्राणु गगनाआंतु । संचरे कां ॥ ९५ ॥ परी मनाचेनि स्थैर्यं धरिला । भक्तीचिया भावना भरला योगबळें आवरला । सज्ज होऊनि ॥ ९६ ॥ तो जडाजडातें विरवितु । भ्रूलतामाजीं संचरतु । जैसा घंटानाद लयस्तु । घंटेसीच होय ॥ ९७ ॥ कां झांकलिया घटींचा दिवा । नेणिजे काय जाहला केव्हां । या रीतीं जो पांडवा । देह ठेवी ॥ ९८ ॥

तो केवळ परब्रह्म । जया परमपुरुष ऐसें नाम । तें माझें निजधाम । होऊनि ठाके ॥ ९९ ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११॥

सकळां जाणणेयां जे लाणी । तिये जाणिवेची जे खाणी । तयां ज्ञानियांचिये आयणी । जयातें अक्षरु म्हणिपे ॥ १०० ॥ चंडवातेंही न मोडे । तें गगनचि की फुडें । वांचूनि जरी होईल मेहुडें । तरी उरेल कैंचें ॥ १०१ ॥ तेविं जाणणेया जें आकळिलें । तें जाणिवलेपणेंचि उमाणलें । मग नेणवेचि तया म्हणितलें । अक्षर सहजें ॥ १०२ ॥ म्हणौनि वेदविद नर । म्हणती जयातें अक्षर । जें प्रकृतीसी पर । परमात्मरूप ॥ १०३ ॥ आणि विषयांचे विष उलंडुनि । जे सर्वेंद्रियां प्रायश्चित्त देऊनि । आहाति देहाचिया बैसोनि । झाडातळीं ॥ १०४ ॥ ते यापरी विरक्त । जयाची निरंतर वाट पाहात । निष्कामासि अभिप्रेत । सर्वदा जें ॥ १०५ ॥ जयाचिया आवडी । न गणिती ब्रह्मचर्याचीं सांकडीं । निष्ठुर होऊनि बापुडीं । इंद्रियें करिती ॥ १०६ ॥ ऐसें जें पद । दुर्लभ आणि अगाध जयाचिये थडिये वेद । चुबुकळिले ठेले ॥ १०७ ॥ तें ते पुरुष होती । जे यापरी लया जाती । तरी पार्था हेचि स्थिती । एकवेळ सांगों ॥ १०८ ॥

तथ अर्जुनें म्हणितलें स्वामी । हेंचि म्हणावया होतों पां मी । तंव सहजें कृपा केली तुम्हीं । तरी बोलिजो कां ॥ १०९ ॥ परि बोलावें तें अति सोहोपें । तेथें म्हणितलें त्रिभुवनदीपें । तुज काय नेणों संक्षेपें । सांगेन ऐक ॥ ११० ॥ तरी मना या बाहेरिलीकडे । यावयाची साविया सवे मोडे । हें हृदयाचिया डोहीं बुडे । तैसें कीजे ॥ १११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च । मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२॥

परी हे तरीच घडे । जरी संयमाचीं अखंडें ।
सर्वद्वारीं कवाडें । कळासती ॥ ११२ ॥
तरी सहजें मन कोंडलें । हृदयींचि असेल उगलें ।
जैसें करचरणीं मोडलें । परिवरु न संडीं ॥ ११३ ॥
तैसें चित्त राहिलिया पांडवा । प्राणांचा प्रणवृचि करावा ।
मग अनुवृत्तिपंथें आणावा । मूर्ध्निवरी ॥ ११४ ॥
तेथ आकाशीं मिळे न मिळे । तैसा धरावा धारणाबळें ।
जंव मात्रात्रय मावळे । अर्धिबंबीं ॥ ११५ ॥
तंववरी तो समीरु । निराळीं कीजे स्थिरु ।
मग लग्नीं जेविं ॐकारु । बिंबींच विलसे ॥ ११६ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३॥ तैसें ॐ हें स्मरों सरे । आणि तेथेंचि प्राणु पुरे ।

मग प्रणवांतीं उरे । पूर्णघन जें ॥ ११७ ॥

म्हणौनि प्रणवैकनाम । हें एकाक्षर ब्रह्म ।

जो माझें स्वरूप परम । स्मरतसांता ॥ ११८ ॥

यापरी त्यजी देहातें । तो त्रिशुद्धी पावे मातें ।

जया पावणया परौतें । आणिक पावणें नाहीं ॥ ११९ ॥

तेथ अर्जुना जरी विपायें । तुझ्या जीवीं हन ऐसें जाये ।

ना हें स्मरण मग होये । कायसयावरी अंतीं ॥ १२० ॥

इंद्रियां अनुघडु पडिलया । जीविताचें सुख बुडिलया ।

आंतुबाहेरी उघडिलया । मृत्युचिन्हें ॥ १२१ ॥

ते वेळीं बैसावेंचि कवणें । मग कवण निरोधी करणें ।

तेथ काह्याचेनि अंतःकरणें । प्रणव स्मरावा ॥ १२२ ॥

तिरे गा ऐशिया हो ध्वनी । झणें थारा देशी हो मनीं ।

<</p>

<</p>

<</p>

<</p>

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरित नित्यशः । तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४॥

पैं नित्य सेविला मी निदानीं । सेवकु होय ॥ १२३ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमां गताः ॥ १५॥

जे विषयांसि तिळांजळी देउनी । प्रवृत्तीवरी निगड वाऊनि । मातें हृदयीं सूनि । भोगिताती ॥ १२४ ॥ परि भोगितया आराणुका । भेटणें नाहीं क्षुधादिकां । तेथ चक्षुरादि रंकां । कवण पाडु ॥ १२५ ॥

ऐसें निरंतर एकवटले । जे अंतःकरणीं मजशीं लिगटले । मीचि होऊनि आटले । उपासिती ॥ १२६ ॥ तयां देहावसान जैं पावे । तैं तिहीं मातें स्मरावें । मग म्यां जरी पावावें । तरी उपास्ति ते कायसी ॥ १२७ ॥ पैं रंकु एक आडलेपणें। काकुळती धांव गा धांव म्हणे। तरी तयाचिये ग्लानि धांवणें । काय न घडे मज ॥ १२८ ॥ आणि भक्तांही तेचि दशा । तरी भक्तीचा सोसु कायसा । म्हणौनि हा ध्वनी ऐसा । न वाखाणावा ॥ १२९ ॥ तिहीं जे वेळीं मी स्मरावा । ते वेळीं स्मरिला कीं पावावा । तो आभारुही जीवां । साहवेचि ना ॥ १३० ॥ तें ऋणवैपण देखोनि आंगीं। मी आपुलियाचि उत्तीर्णत्वालागीं । भक्तांचियां तनुत्यागीं । परिचर्या करीं ॥१३१॥ देहवैकल्याचा वारा । झणें लागेल या सुकुमारा । म्हणौनि आत्मबोधाचिया पांजिरां । सूर्ये तयातें ॥ १३२ ॥ वरी आपुलिया स्मरणाची उवाइली । हींव ऐसी करीं साउली । ऐसेनि नित्य बुद्धि संचली । मी आणीं तयातें ॥ १३३ ॥ म्हणौनि देहांतींचें सांकडें । माझिया कहींचि न पडे । मी आपुलियातें आपुलीकडे । सुखेंचि आणीं ॥ १३४ ॥ वरचील देहाची गंवसणी फेडुनी । आहाच अहंकाराचे रज झाडुनी । शुद्ध वासना निवडुनी । आपणपां मेळवीं ॥१३५॥ आणि भक्तां तरी देहीं । विशेष एकवंकीचा ठावो नाहीं । म्हणौनि अव्हेरु करितां कांहीं । वियोगु ऐसा न वाटे ॥१३६॥ नातरी देहांतींचि मियां यावें । मग आपणपें यातें न्यावें ।

हेंही नाहीं स्वभावें । जे आधींचि मज मीनले ॥ १३७ ॥ येरी शरीराचिया सलिलीं । असतेपण हेचि साउली । वांचुनि चंद्रिका ते ठेली । चंद्रींच आहे ॥ १३८ ॥ ऐसे जे नित्ययुक्त । तयांसि सुलभ मी सतत । म्हणौनि देहांतीं निश्चित । मीचि होती ॥ १३९ ॥ मग क्लेशतरूची वाडी । जे तापत्रयाग्नीची सगडी । जे मृत्युकाकासीं कुरोंडी । सांडिली आहे ॥ १४० ॥ जें दैन्याचें दुभतें । जें महाभयातें वाढिवतें । जें सकळ दुःखाचें पुरतें । भांडवल ॥ १४१ ॥ जें दुर्मतीचें मूळ । जें कुकर्माचें फळ । जें व्यामोहाचें केवळ । स्वरूपचि ॥ १४२ ॥ जें संसाराचें बैसणें । जें विकारांचें उद्यानें । जें सकळ रोगांचें भाणें । वाढिलें आहे ॥ १४३ ॥ जें काळाचा खिचु उशिटा । जें आशेचा आंगवठा । जन्ममरणाचा वोलिंवटा । स्वभावें जें ॥ १४४ ॥ जें भुलीचें भरिव । जें विकल्पाचें वोतिंव । किंबहुना पेंव । विंचुवांचें ॥ १४५ ॥ जें व्याघ्राचें क्षेत्र । जें पण्यांगनेचें मैत्र । जें विषयविज्ञानयंत्र । सुपूजित ॥ १४६ ॥ जें लावेचा कळवळा । निवालिया विषोदकाचा गळाळा । जें विश्वासु आंगवळा । संवचोराचा ॥ १४७ ॥ जें कोढियाचें खेंव । जें काळसर्पाचें मार्दव । गोरियेचें स्वभाव । गायन जें ॥ १४८ ॥

जें वैरियाचा पाहुणेरु । जें दुर्जनाचा आदरु । हें असो जें सागरु । अनर्थांचा ॥ १४९ ॥ जें स्वप्नीं देखिलें स्वप्न । जें मृगजळें सासिन्नलें वन । जें धूम्ररजांचें गगन । ओतलें आहे ॥ १५० ॥ ऐसें जें हें शरीर । तें ते न पवतीचि पुढती नर । जे होऊनि ठेले अपार । स्वरूप माझें ॥ १५१ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन । मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६॥

ए-हवीं ब्रह्मपणाचिये भडसे । न चुकतीचि पुनरावृत्तीचे वळसे । पिर निवटिलयाचे जैसें । पोट न दुखे ॥ १५२ ॥ नातरी चेइिलयानंतरें । न बुडिजे स्वप्नींचेिन महापुरें । तेवीं मातें पावले ते संसारें । लिंपतीचि ना ॥ १५३ ॥ ए-हवीं जगदाकाराचें सिरें । जें चिरस्थायीयांचे धुरे । ब्रह्मभुवन गा चवरें । लोकाचळाचें ॥ १५४ ॥ जिये गांवींचा पहारु दिवोवरी । एका अमरेंद्राचें आयुष्य न धरी । विळोनि पांतीं उठी एकसरी । चवदाजणांची ॥१५५॥

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः । रात्रि युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७॥

जैं चौकडिया सहस्र जाये । तैं ठाये ठावो विळुचि होये । आणि तैसेचि सहस्रविरये पाहे । रात्री जेथ ॥ १५६ ॥ येवढें अहोरात्र जेथिंचें । तेणें न लोटती जे भाग्याचे । देखती ते स्वर्गींचे । चिरंजीव ॥ १५७ ॥ येरां सुरगणांची नवाई । विशेष सांगावी येथ काई । मुद्दल इंद्राचीचि दशा पाहीं । जे दिहाचे चौदा ॥ १५८ ॥ परि ब्रह्मयाचियाहि आठां पाहारांतें । आपुलिया डोळां देखते । जे आहाति गा तयांतें । अहोरात्रविद म्हणिपे ॥ १५९ ॥

COPIC PACTOR COPIC

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे । रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते । रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९॥

तये ब्रह्मभुवनीं दिवसें पाहे । ते वेळीं गणना केहीं न समाये । ऐसें अव्यक्ताचें होये । व्यक्त विश्व ॥ १६० ॥ पुढती दिहाची चौपाहारी फिटे । आणि हा आकारसमुद्र आटे । पाठीं तैसाचि मग पाहांटे । भरों लागे ॥ १६१ ॥ शारदीयेचिये प्रवेशीं । अभ्रें जिरती आकाशीं । मग ग्रीष्मांतीं जैशीं । निगती पुढती ॥ १६२ ॥ तैशी ब्रह्मदिनाचिये आदी । हे भूतसृष्टीची मांदी । मिळे जंव सहस्रावधी । निमित्त पुरे ॥ १६३ ॥ पाठीं रात्रींचा अवसरु होये । आणि विश्व अव्यक्तीं लया जाये । तोही युगसहस्र मोटका पाहे । आणि तैसेंचि रचे ॥१६४॥ हें सांगावया काय उपपत्ती । जे जगाचा प्रळयो आणि संभूती । इये ब्रह्मभुवनींचिया होती । अहोरात्रामाजीं ॥ १६५ ॥ कैसें थोरिवेचें मान पाहें पां । जो सृष्टीबीजाचा साटोपा ।

র্ম্ভেসবর্ম্ভিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিসবর্মিস

परि पुनरावृत्तीचिया मापा । शीग जाहाला ॥ १६६ ॥ ए-हवीं त्रैलोक्य हें धनुर्धरा । तिये गांवींचा गा पसारा । तो हा दिनोदयीं एकसरां । मांडतु असे ॥ १६७ ॥ पाठीं रात्रींचा समो पावे । आणि अपैसाचि सांठवे । म्हणिये जेथिंचें तेथ स्वभावें । साम्यासी ये ॥ १६८ ॥ जैसें वृक्षपण बीजासि आलें । कीं मेघ हें गगन जाहालें । तैसें अनेकत्व जेथ सामावलें । तें साम्य म्हणिपे ॥ १६९ ॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः । यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २०॥

तेथ समविषम न दिसे कांहीं । म्हणौनि भूतें हे भाष नाहीं । जेविं दूधिच जाहालिया दहीं । नामरूप जाय ॥ १७० ॥ तेविं आकारलोपासिरसें । जगाचें जगपण भ्रंशे । परि जेथें जाहालें तें जैसें । तैसेंचि असे ॥ १७१ ॥ तैं तया नांव सहज अव्यक्त । आणि आकारावेळीं तेंचि व्यक्त । हें एकास्तव एक सूचित । ए-हवीं दोनी नाहीं ॥१७२॥ जैसें आटिलया रूपें । आटलेपण ते खोटी म्हणिपे । पुढती तो घनाकारु हारपे । जे वेळीं अलंकार होती ॥१७३॥ हीं दोहीं जैशीं होणीं । एकीं साक्षिभूत सुवर्णीं । तैसी व्यक्ताव्यक्ताची कडसणी । वस्तूच्या ठायीं ॥ १७४ ॥ तें तरी व्यक्त ना अव्यक्त । नित्य ना नाशवंत । या दोहीं भावाअतीत । अनादिसिद्ध ॥ १७५ ॥ जें हें विश्विच होऊनि असे । परि विश्वपण नासिलेनि न

नासे । अक्षरें पुसिल्या न पुसे । अर्थु जैसा ॥ १७६ ॥ पाहें पां तरंग तरी होत जात । पिर तेथ उदक तें अखंड असत । तेवीं भूताभावीं न नाशत । अविनाश जें ॥ १७७ ॥ नातरी आटितये अळंकारीं । नाटतें कनक असे जयापरी । तेवीं मरितये जीवाकारीं । अमर जें आहे ॥ १७८ ॥

<</p>

</p

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् । यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया । यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२॥

जयातें अव्यक्त म्हणों ये कोडें । म्हणतां स्तुति हें ऐसें नावडे । जें मनाबुद्धी न सांपडे । म्हणौनियां ॥ १७९ ॥ आणि आकारा आलिया जयाचें । निराकारपण न वचे । आकार लोपें न विसंचे । नित्यता गा ॥ १८० ॥ म्हणौनि अक्षर जें म्हणिजे । तेवींचि म्हणतां बोधुहि उपजे । जयापरौता पैसु न देखिजे । या नाम परमगती ॥ १८१ ॥ परि आघवा इहीं देहपुरीं । आहे निजेलियाचे परी । जे व्यापारु करवी ना करी । म्हणौनियां ॥ १८२ ॥ ए-हवीं जे शारीरचेष्टा । त्यांमाजीं एकही न ठके गा सुभटा । दाहीं इंद्रियांचिया वाटा । वाहतिच आहाती ॥ १८३ ॥ उकलूनि विषयांचा पेटा । होत मनाचा चोहटा । तो सुखदु:खाचा राजवांटा । भीतराहि पावे ॥ १८४ ॥ परि रावो पहुडलिया सुखें । जैसा देशींचा व्यापारु न ठके ।

प्रजा आपुलालेनि अभिलाखें । करितचि असती ॥ १८५ ॥ तैसें बुद्धीचें हन जाणणें। कां मनाचें घेणें देणें। इंद्रियांचें करणें । स्फुरण वायूचें ॥ १८६ ॥ हे देहक्रिया आघवी । न करवितां होय बरवी । जैसा न चलवितेनि रवी । लोकु चाले ॥ १८७ ॥ अर्जुना तयापरी । सुतला ऐसा आहे शरीरीं । म्हणौनि पुरुषु गा अवधारीं । म्हणिपे जयातें ॥ १८८ ॥ आणि प्रकृति पतिव्रते । पडिला एकपत्नीव्रतें । येणेंहि कारणें जयातें । पुरुषु म्हणों ये ॥ १८९ ॥ पैं वेदाचें बहुवसपण । देखेचिना जयाचें आंगण । हें गगनाचें पांघरूण । होय देखा ॥ १९० ॥ ऐसें जाणूनि योगीश्वर । जयातें म्हणती परात्पर । जें अनन्यगतीचें घर । गिंवसीत ये ॥ १९१ ॥ जे तन् वाचा चित्तें । नाइकती दुजिये गोष्टीतें । तयां एकनिष्ठेचें पिकतें । सुक्षेत्र जें ॥ १९२ ॥ हें त्रैलोक्यचि पुरुषोत्तमु । ऐसा साच जयाचा मनोधर्मु । तया आस्तिकाचा आश्रम् । पांडवा गा ॥ १९३ ॥ जें निगर्वाचें गौरव । जें निर्गुणाची जाणिव । जें सुखाची राणिव । निराशांसी ॥ १९४ ॥ जें संतोषियां वाढिलें ताट । जें अचिंता अनाथांचें मायपोट । भक्तीसी उजू वाट । जया गांवा ॥ १९५ ॥ हें एकैक सांगोनि वायां। काय फार करूं धनंजया। पैं गेलिया जया ठाया । तो ठावोचि होईजे ॥ १९६ ॥

हिंवाचिया झुळुका । जैसें हिंवचि पडे उष्णोदका । कां समोर जालिया अर्का। तमचि प्रकाशु होय ॥ १९७ ॥ तैसा संसारु जया गांवा । गेला सांता पांडवा । होऊनि ठाके आघवा । मोक्षाचाची ॥ १९८ ॥ तरी अग्नीमाजीं आलें। जैसें इंधनचि अग्नि जहालें। पाठीं न निवडेचि कांहीं केलें । काष्ठपण ॥ १९९ ॥ नातरी साखरेचा माघौता । बुद्धिमंतपणेंही करितां । परि ऊंस नव्हे पंडुसुता । जियापरी ॥ २०० ॥ लोहाचें कनक जाहलें । हें एकें परिसेंचि केलें । आतां आणिक कैचें तें गेलें । लोहत्व आणी ॥ २०१ ॥ म्हणौनि तूप होऊनि माघौतें । जेवीं दूधपणा न येचि निरुतें । तेवीं पावोनियां जयातें । पुनरावृत्ति नाहीं ॥ २०२ ॥ तें माझें परम । साचोकारें निजधाम । हें आंतुवट तुज वर्म। दाविजत असे॥ २०३॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्ति चैव योगिनः । प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३॥

तेवींचि आणिकेंही एके प्रकारें । हें जाणतां आहे सोपारें ।
तरी देह सांडितेनि अवसरें । जेथ मिळती योगी ॥ २०४ ॥
अथवा अवचटें ऐसें घडे । जे अवसरें देह सांडे ।
तरि माघौतें येणें घडे । देहासीचि ॥ २०५ ॥
म्हणौनि काळशुद्धी जरी देह ठेविती । तरी ठेवितखेंवी ब्रह्मचि
होती । ए-हवीं अकाळीं तरी येती । संसारा पुढती ॥२०६॥

तैसे सायुज्य आणि पुनरावृत्ती । या दोन्ही अवसराआधीन आहाती । तोचि अवसरु तुजप्रती । प्रसंगें सांगों ॥ २०७ ॥ तरि ऐकें गा सुभटा । पातिलया मरणाचा माजिवटा । पांचै आपुलालिया वाटा । निघती अंतीं ॥ २०८ ॥ ऐसा वरिपडिला प्रयाणकाळीं । बुद्धीतें भ्रमु न गिळी । स्मृति नव्हे आंधळी । न मरे मन ॥ २०९ ॥ हा चेतना वर्गु आघवा । मरणीं दिसे टवटवा । परि अनुभविलिया ब्रह्मभावा । गंवसणी होऊनि ॥ २१० ॥ ऐसा सावध हा समवावो । आणि निर्वाणवेर्हीं निर्वाहो । हें तरीच घडे जरी सावावो । अग्नीचा आथी ॥ २११ ॥ पाहां पां वारेनें कां उदकें । जैं दिवियाचें दिवेपण झांके । तैं असतीच काय देखे । दिठी आपुली ॥ २१२ ॥ तैसें देहांतींचेनि विषमवातें । देह आंत बाहेरी श्लेष्माआंते । तैं विझोनि जाय उजितें । अग्नीचें तें ॥ २१३ ॥ ते वेळीं प्राणासि प्राणु नाहीं । तेथ बुद्धि असोनि करील काई । म्हणौनि अग्नीविण देहीं । चेतना न थारे ॥ २१४ ॥ अगा देहींचा अग्नि जरी गेला । तरी देह नव्हे चिखलु वोला । वायां आयुष्यवेळु आपला । आंधारें गिंवसी ॥ २१५ ॥ आणि मागील स्मरण आघवें । तें तेणें अवसरें सांभाळावें । मग देह त्यजूनि मिळावें । स्वरूपीं कीं ॥ २१६ ॥ तंव तया श्लेष्माचे चिखलीं । चेतनाचि बुडोनि गेली । तथ मागिली पुढिली हे ठेली । आठवण सहजें ॥ २१७ ॥ म्हणौनि आधीं अभ्यासु जो केला । तो मरण न येतांचि निमोनि

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

गेला । जैसें ठेवणें न दिसतां मालवला । दीपु हातींचा ॥२१८॥ आतां असो हें सकळ । जाण पां ज्ञानासि अग्नि मूळ । तया अग्नीचें प्रयाणीं बळ । संपूर्ण आथी ॥ २१९॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् । तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४॥

आंत अग्निज्योतीचा प्रकाशु । बाहेरी शुक्लपक्षु आणि दिवसु । आणि सामासांमाजीं मासु । उत्तरायण ॥ २२० ॥ ऐशिया समयोगाची निरुती । लाहोनि जे देह ठेविती । ते ब्रह्मचि होती । ब्रह्मविद ॥ २२१ ॥ अवधारीं गा धनुर्धरा । येथवरी सामर्थ्य यया अवसरा । तेवींचि हा उजू मार्ग स्वपुरा । यावयां पैं ॥ २२२ ॥ एथ अग्नी हें पहिलें पायतरें । ज्योतिर्मय हें दुसरें । दिवस जाणें तिसरें । चौथें शुक्लपक्ष ॥ २२३ ॥ आणि सामास उत्तरायण । तें वरचील गा सोपान । येणें सायुज्यसिद्धिसदन । पावती योगी ॥ २२४ ॥ हा उत्तम काळु जाणिजे । यातें अर्चिरा मार्गु म्हणिजे । आतां अकाळु तोही सहजें । सांगेन आईक ॥ २२५ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् । तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५॥

तरी प्रयाणाचिया अवसरें । वातश्लेष्मां सुभरें । तेणें अंत:करणीं आंधारें । कोंदलें ठाके ॥ २२६ ॥

सर्वेंद्रियां लांकुड पडे । स्मृति भ्रमामाजीं बुडे । मन होय वेडें । कोंडे प्राण ॥ २२७ ॥ अग्नीचें अग्निपण जाये । मग तो धूमचि अवघा होये । तेणें चेतना गिंवसिली ठाये । शरीरींची ॥ २२८ ॥ जैसें चंद्राआड आभाळ । सदट दाटे सजळ । मग गडद ना उजाळ । ऐसें झांवळें होय ॥ २२९ ॥ कां मरे ना सावध । ऐसें जीवितासि पडे स्तब्ध । आयुष्य मरणाची मर्याद । वेळु ठाकी ॥ २३० ॥ ऐसी मनबुद्धिकरणीं । सभोंवतीं धूमाकुळाची कोंडणी । तेथ जन्में जोडलिये वाहणी । युगचि बुडे ॥ २३१ ॥ हां गा हातींचें जे वेळीं जाये । ते वेळीं आणिका लाभाची गोठी कें आहे । म्हणौनि प्रयाणीं तंव होये । येतुली दशा ॥२३२॥ ऐशी देहाआंतु स्थिती । बाहेरि कृष्णपक्षु वरि राती । आणि सामासही वोडवती । दक्षिणायन ॥ २३३ ॥ इये पुनरावृत्तीचीं घराणीं । आघवीं एकवटती जयाचिया प्रयाणीं । तो स्वरूपसिद्धीची काहाणी । कैसेंनि आइके ॥२३४॥ ऐसा जयाचा देह पडे । तया योगी म्हणौनि चंद्रवरी जाणें घडे । मग तेथूनि मागुता बहुडे । संसारा ये ॥ २३५ ॥ आम्हीं अकाळु जो पांडवा । म्हणितला तो हा जाणावा । आणि हाचि धूम्रमार्गु गांवा । पुनरावृत्तीचिया ॥ २३६ ॥ येर तो अर्चिरा मार्गु । तो वसता आणि असलगु । साविया स्वस्त चांगु । निवृत्तीवरी ॥ २३७ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६॥

ऐशिया अनादि या दोन्ही वाटा । एकी उजू एकी अव्हांटा । म्हणौनि बुद्धिपूर्वक सुभटा । दाविलिया तुज ॥ २३८ ॥ कां जे मार्गामार्ग देखावे । साच लटिकें वोळखावें । हिताहित जाणावें । हिताचिलागीं ॥ २३९ ॥ पाहें पां नाव देखतां बरवी । कोणी आड घाली काय अथावीं । कां सुपंथ जाणौनियां अडवीं । रिगवत असे ॥ २४० ॥ जो विष अमृत वोळखे । तो अमृत काय सांडूं शके तेविं जो उजू वाट देखे । तो अव्हांटा न वचे ॥ २४१ ॥ म्हणौनि फुडें। पारखावें खरें कुडें। पारखिलें तरी न पडे । अनवसरें कहीं ॥ २४२ ॥ ए-हवीं देहांतीं थोर विषम । या मार्गाचें आहे संभ्रम । जन्मे अभ्यासिलियाचें हन काम । जाईल वायां ॥ २४३ ॥ जरी अचिरा मार्गु चुकलिया । अवचटें धूम्रपंथें पडलिया । तरी संसारपांथीं जुंतलिया । भंवतिच असावें ॥ २४४ ॥ हे सायास देखोनि मोठे। आतां कैसेनि पां एकवेळ फिटे। म्हणौनि योगमार्गु गोमटे । शोधिले दोन्ही ॥ २४५ ॥ तंव एकें ब्रह्मत्वा जाइजे । आणि एकें पुनरावृत्ती येइजे । परि दैवगत्या जो लाहिजे । देहांतीं जेणें ॥ २४६ ॥

> नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन । तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७॥

ते वेळीं म्हणितलें हें नव्हे । वांया अवचटें काय पावे । देह त्यजूनि वस्तु होआवें । मार्गेंचि कीं ॥ २४७ ॥ तरी आतां देह असो अथवा जावो । आम्ही तों केवळ वस्तूचि आहों । कां जे दोरीं सर्पत्व वावो । दोराचिकडुनी ॥२४८॥ मज तरंगपण असे कीं नसे । ऐसें हें उदकासी कहीं प्रतिभासे । तें भलतेव्हां जैसें तैसें । उदकचि कीं ॥ २४९ ॥ तरंगाकारें न जन्मेचि । ना तरंगलोपें न निमेचि । तेविं देहीं जे देहेंचि । वस्तु जाहले ॥ २५० ॥ आतां शरीराचें तयाचिया ठाई । आडनांवही उरलें नाहीं । तरी कोणें काळें काई । निमे तें पाहें पां ॥ २५१ ॥ मग मार्गातें कासया शोधावें । कोणें कोठूनि कें जावें जरी देशकालादि आघवें । आपणचि असे ॥ २५२ ॥ आणि हां गा घटु जे वेळीं फुटे । ते वेळीं तेथिंचें आकाश लागे नीट वाटे । वाटा लागे तरी गगना भेटे । ए-हवीं चुके ॥२५३॥ पाहें पां ऐसें हन आहे । कीं तो आकारुचि जाये । येर गगन तें गगनींचि आहे । घटत्वाहि आधीं ॥ २५४ ॥ ऐसिया बोधाचेनि सुरवाडें । मार्गामार्गाचे सांकडें । तया सोऽहंसिद्धां न पडे । योगियांसी ॥ २५५ ॥ याकारणें पंडुसुता । तुवां होआवें योगयुक्ता । येतुलेनि सर्वकाळीं साम्यता । आपैसया होईल ॥ २५६ ॥ मग भलतेथ भलतेव्हां । देह असो अथवा जावा । परि अबंधा नित्य ब्रह्मभावा । विघडु नाहीं ॥ २५७ ॥ तो कल्पादि जन्मा नागवे । कल्पांतीं मरणें नाप्लवें ।

<</p>

माजीं स्वर्गसंसाराचेनि लाघवें । झकवेना ॥ २५८ ॥ येणें बोधें जो योगी होये । तयासीचि या बोधाचें नीटपण आहे । कां जे भोगातें पेलूनि पायें । निजरूपा ये ॥ २५९ ॥ पै गा इंद्रादिकां देवां । जयां सर्वस्वें गाजती राणिवा । तें सांडणें मानूनि पांडवा । डावली जो ॥ २६० ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टाम् । अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

ॐ तत्सिदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टामोऽध्याय:॥८॥

जरी वेदाध्ययनाचें जालें । अथवा यज्ञाचें शेतचि पिकलें । कीं तपोदानांचे जोडलें । सर्वस्व हन जें ॥ २६१ ॥ तया आघवयाचि पुण्याचा मळा । भारु आंतौनि जया ये फळा । तें परब्रह्मा निर्मळा । सांटि न सरे ॥ २६२ ॥ जें नित्यानंदाचेनि मानें । उपमेचा कांटाळा न दिसे सानें । पाहा पां वेदयज्ञादि साधनें । जया सुखा ॥ २६३ ॥ जें विटे ना सरे । भोगी तयाचेनि पवाडें पुरे । पुढती महासुखाचें सोयरें । भावंडिच ॥ २६४ ॥ ऐसें दृष्टीचेनि सुखपणें । जयासी अदृष्टाचें बैसणें । जें शतमखाही आंगवणें । नोहेचि एका ॥ २६५ ॥ तयातें योगीश्वर अलौकिकं । दिठीचेनि हाततुकं । अनुमानती कौतुकं । तंव हळुवट आवडे ॥ २६६ ॥

मग तया सुखाची किरीटी । करूनियां गा पाउटी ।
परब्रह्माचिये पाठीं । आरूढती ॥ २६७ ॥
ऐसे चराचरैक भाग्य । जें ब्रह्मेशां आराधना योग्य ।
योगियांचें भोग्य । भोगधन जें ॥ २६८ ॥
जो सकळ कळांची कळा । जो परमानंदाचा पुतळा ।
जो जिवाचा जिव्हाळा । विश्वाचिया ॥ २६९ ॥
जो सर्वज्ञतेचा वोलावा । जो यादवकुळींचा कुळदिवा ।
तो श्रीकृष्णजी पांडवा- । प्रती बोलिला ॥ २७० ॥
ऐसा कुरुक्षेत्रींचा वृत्तांतु । संजयो रायासी असे सांगतु ।
तेचि परियेसा पुढारी मातु । ज्ञानदेव म्हणे ॥ २७१ ॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां अष्टमोध्याय: ॥

॥ रामकृष्णहरि ॥

सेवाभावी संतचरणरज

बाळकृष्ण प्रकाश कदम

जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

(इतर PDF ग्रंथासाठी संपर्क - ९७६५६५३८०५)
